जन्म शताब्दी पुस्तकमाला- २३

आत्मिक उन्नति के चार चरण

- साधना
- स्वाध्याय
- संयम
- सेवा

(प्रवचन)
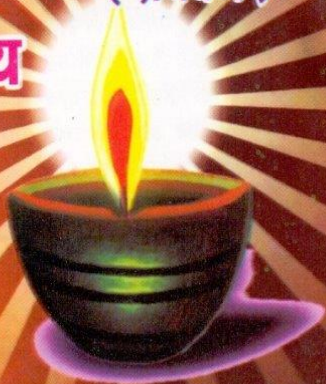
– श्रीराम शर्मा आचार्य

आत्मिक उन्नति के चार चरण— साधना, स्वाध्याय, संयम, सेवा

गायत्री मंत्र हमारे साथ-साथ बोलें—

ॐ भूर्भुवः स्वः तत्सवितुर्वरेण्यं भर्गो देवस्य धीमहि धियो यो नः प्रचोदयात्।

साथियो, युग निर्माण परिवार का गठन एक प्रयोगशाला के रूप में हुआ है। प्रयोगशाला में रासायनिक पदार्थ तैयार किए जाते हैं और उसके परिणामों को सर्वसाधारण के सामने उपस्थित किया जाता है। युग निर्माण परिवार का गठन एक पाठशाला के तरीके से हुआ है, जहाँ विद्यार्थी पढ़ाए जाते हैं और पढ़-लिखकर के वे समाज के महत्त्वपूर्ण उत्तरदायित्वों को सँभालते हैं। गायत्री परिवार का गठन एक व्यायामशाला के तरीके से किया गया है, जिसमें लोग व्यायाम करते हैं और पहलवान बनकर के दंगल में कुश्तियाँ पछाड़ते हैं। युग निर्माण परिवार का गठन नर्सरी के तरीके से किया गया है, जिसमें

छोटे-छोटे फलदार पौधे तैयार किए जाते हैं और यहाँ पैदा होने के बाद दूसरे बगीचों में भेज दिए जाते हैं, जहाँ बड़े-बड़े उद्यान-बगीचे बनकर तैयार होते हैं। युग निर्माण परिवार का गठन एक कृषि फार्म के तरीके से हुआ है। कृषिफार्म में छोटे-छोटे प्रयोग गन्ने के, सोयाबीन के अमुक के-तमुक के किए जाते हैं और उसके जो निष्कर्ष निकलते हैं, वह सब लोगों को मालूम पड़ते हैं और उसी आधार पर वे अपने-अपने कृषि-कार्य को आरंभ करते हैं। व्यक्तियों के निर्माण की एक प्रयोगशाला के रूप में, पाठशाला के रूप में, व्यायामशाला के रूप में, नर्सरी और कृषिफार्म के रूप में, युग निर्माण परिवार का गठन किया गया। हम चाहते हैं कि व्यक्ति बदल जाएँ और ऊँचा उठें, क्योंकि हम समाज को ऊँचा उठाना चाहते हैं, समुन्नत बनाना चाहते हैं।

आखिर समाज है क्या? समाज व्यक्तियों का समूह मात्र है। व्यक्ति जैसे होंगे वैसा ही तो समाज बनेगा। समाज कोई अलग चीज नहीं है। वरन

व्यक्तियों के समूह का नाम है। इसलिए व्यक्तियों को श्रेष्ठ बनाने का मतलब है समय को अच्छा बनाना और समय को अच्छा बनाने का मतलब है युग के प्रवाह को बदल देना युग का प्रवाह "बदल देना" अर्थात समाज को बदल देना। समाज को बदल देना अर्थात व्यक्तियों को बदल देना, यही हमारा उद्देश्य है। इसी क्रिया-कलाप के लिए और इसी परिवर्तन के लिए हम लगे हुए हैं और युग परिवर्तन का जो नारा लगाते हैं, उसका मतलब ही यह है कि हम युग बदलेंगे, समाज बदलेंगे और व्यक्ति बदलेंगे। बदलने के लिए हम व्यापक क्षेत्र में प्रयोग नहीं कर सकते। अतः छोटे क्षेत्र में हम प्रयोग करते हैं, ताकि इसकी देखा-देखी इसका अनुकरण करते हुए अन्यत्र भी यही परंपराएँ चलें, अन्यत्र भी इसी तरीके से क्रिया-कलाप चालू किए जा सकें। बाहर की परिस्थितियाँ मन की स्थिति के ऊपर निर्भर हैं। मन जैसा ही हमारा होता है, परिस्थितियाँ उसी के अनुरूप बननी शुरू हो जाती

हैं। हम इच्छाएँ करते हैं, इच्छाओं से हमारा मस्तिष्क काम करता है। मस्तिष्क की गणनाओं से शरीर काम करता है। शरीर और मस्तिष्क दोनों ही हमारी अंतरात्मा की—अंत:करण की प्रेरणा से काम करते हैं। इसीलिए जरूरत इस बात की पड़ी कि हमारी आंतरिक आस्थाओं को, आंतरिक मान्यताओं को, निष्ठाओं को परिवर्तित कर दिया जाए तो जीवन का सारा का सारा ढाँचा ही बदल जाएगा।

मनुष्य के सामने असंख्य समस्याएँ हैं और उन असंख्य समस्याओं का समाधान केवल इस बात पर टिका हुआ है कि हमारी आंतरिक स्थिति सही बना दी जाए। दृष्टिकोण हमारा गलत होता है, तो हमारे क्रिया-कलाप गलत होते हैं और गलत क्रिया-कलापों के परिणामस्वरूप जो प्रतिक्रियाएँ होती हैं, जो परिणाम सामने आते हैं, वे भयंकर दु:खदाई होते हैं, कष्टकारक होते हैं। कष्टकारक परिस्थितियों के निवारण करने के लिए आवश्यक है कि मनुष्य का चिंतन और दृष्टिकोण बदल दिया जाए, परिष्कृत

कर दिया जाए। यही हैं हमारे प्रयास जिसके लिए हम अपनी समस्त शक्ति के साथ लगे हुए हैं।

मनुष्य के आंतरिक उत्थान, आंतरिक उत्कर्ष, आत्मिक विकास के लिए क्या करना चाहिए और कैसे करना चाहिए? इसका समाधान करने के लिए हमको चार बातें तलाश करनी पड़ती हैं। इन्हीं चार चीजों के आधार पर हमारी आत्मिक उन्नति टिकी हुई है और वे चार आधार हैं—साधना, स्वाध्याय, संयम और सेवा। ये चारों ऐसे हैं जिनमें से एक को भी आत्मोत्कर्ष के लिए छोड़ा नहीं जा सकता। इनमें से एक भी ऐसा नहीं है जिसके बिना हमारे जीवन का उत्थान हो सके। चारों आपस में अविच्छिन्न रूप से जुड़े हुए हैं, जिस तरीके के कई तरह की चौकड़ियाँ आपस में जुड़ी हुई हैं—मसलन बीज एक, जमीन-दो, खाद-तीन, पानी चार। चारों जब तक नहीं मिलेंगे कृषि नहीं हो सकती। उसका बढ़ना संभव नहीं है। व्यापार के लिए अकेली पूँजी से काम नहीं चल सकता। इसके लिए पूँजी-एक, अनुभव-दो, वस्तुओं की माँग-तीन, ग्राहक-

चार। इन चारों को आप ढूँढ़ लेंगे तो व्यापार चलेगा और उसमें सफलता मिलेगी। मकान बनाना हो तो उसके लिए ईंट, चूना, लोहा लकड़ी इन चारों चीजों की जरूरत है। चारों में से एक भी चीज अगर कम पड़ेगी तो हमारी इमारत नहीं बन सकती। सफलता प्राप्त करने के लिए मनुष्य का कौशल आवश्यक है, साधन आवश्यक है, सहयोग आवश्यक है और अवसर आवश्यक है। इन चारों चीजों में से एक भी कम पड़ेगी तो समझदार आदमी भी सफलता नहीं प्राप्त कर सकेगा—सफलता रुकी रह जाएगी। जीवन-निर्वाह के लिए भोजन, विश्राम, मल विसर्जन और श्रम-उपार्जन चारों की आवश्यकता होती है। ये चारों क्रियाएँ होंगी तभी हम जिंदा रहेंगे। यदि इनमें से एक भी चीज कम पड़ जाएगी तो आदमी का जीवित रहना मुश्किल पड़ जाएगा। ठीक इसी प्रकार से आत्मिक जीवन का विकास करने के लिए—आत्मोत्कर्ष के लिए चारों का होना आवश्यक है, अन्यथा व्यक्ति निर्माण का उद्‌देश्य पूरा न हो सकेगा।

अब हम चारों चीजों के ऊपर प्रकाश डालते हैं। पहली है उपासना प्लस साधना। उपासना और साधना—इन दोनों को मिलाकर एक पूरी चीज बनती है। उपासना का अर्थ है—भगवान पर विश्वास, भगवान की समीपता। उपासना पाने भगवान के पास बैठना–नजदीक बैठना। इसका मतलब यह हुआ कि उसकी विशेषताएँ हम अपने जीवन में धारण करें—जैसे आग के पास हम बैठते हैं, तो आग की गरमी से हमारे कपड़े गरम हो जाते हैं, हाथ गरम हो जाते हैं, शरीर गरम हो जाता है। पास बैठने का यही लाभ होना चाहिए। बरफ के पास बैठते हैं, ठंढक में बैठते हैं तो हमारे हाथ ठंढे हो जाते हैं, कपड़े ठंढे हो जाते हैं। पानी में बरफ डालते हैं तो पानी ठंढा हो जाता है। ठंढक के नजदीक जाने से हमें ठंढक मिलनी चाहिए। गरमी की समीपता से गरमी मिलनी चाहिए। सुगंधित चीजों से सुगंध मिलनी चाहिए। चंदन के समीप उगने वाले पौधे सुगंधित हो जाते हैं—उनकी समीपता की वजह से। यही समीपता

वास्तविक है। उपासना का अर्थ यह है कि हम भगवान का भजन करें, नाम लें, जप करें, ध्यान करें, पर साथ-साथ हम इस बात के लिए भी कोशिश करें कि हम भगवान के नजदीक आते जाएँ। भगवान हमारे में समाविष्ट होता जाए और हम भगवान में समाविष्ट होते जाएँ अर्थात दोनों एक हो जाएँ। एक होने से मतलब यह है कि दोनों की इच्छाएँ, दोनों की गतिविधियाँ, दोनों की क्रियापद्धति, दोनों के दृष्टिकोण एक जैसे रहें। हमको ईश्वर जैसा बनने का प्रयत्न करना चाहिए। ईश्वर जैसे बनें न कि ईश्वर पर हुकुम चलाएँ और उनको यह आदेश दें कि आपको ऐसा करना चाहिए। आपको किसी भी हालत में हमारी माँगें पूरी करनी चाहिए। उपासना का तात्पर्य अपनी मनोभूमि को इस लायक बनाना है कि हम भगवान के आज्ञानुवर्ती बन सकें। उनके संकेतों के इशारे पर अपनी विचारणा और क्रियापद्धति को ढाल सकें। उपासना-भजन इसीलिए किया जाता है।

साधना—साधना का अर्थ है कि अपने गुण-कर्म-स्वभाव को साथ लेना। वस्तुतः मनुष्य चौरासी लाख योनियों में घूमते-घूमते उन सारे के सारे प्राणियों के कुसंस्कार अपने भीतर जमा करके ले आया है, जो मनुष्य जीवन के लिए आवश्यक नहीं हैं, बल्कि हानिकारक हैं। तो भी स्वभाव के अंग बन गए हैं और हम मनुष्य होते हुए भी पशु-संस्कारों से प्रेरित रहते हैं और पशु-प्रवृत्तियों को बहुधा अपने जीवन में कार्यान्वित करते रहते हैं। इस अनगढ़पन को ठीक कर लेना, सुगढ़पन का अपने भीतर से विकास कर लेना, कुसंस्कारों को जो पिछली योनियों के कारण हमारे भीतर जमे हुए हैं, उनको निरस्त कर देना और अपना स्वभाव इस तरह का बना लेना, जिसको हम मानवोचित कह सकें—साधना है। साधना के लिए हमको वही क्रिया-कलाप अपनाने पड़ते हैं जो कि एक कुसंस्कारी घोड़े या बैल को सुधारने के लिए उसके मालिकों को करने पड़ते हैं—हल में चलने के लिए और गाड़ी में चलने के लिए। कुसंस्कारों

को दूर करने के लिए हमको लगभग उसी तरह से प्रयत्न करने पड़ते हैं जैसे कि सरकस के पशुओं को पालते हुए उन्हें इस लायक बनाते हैं कि वे सरकस में तमाशा दिखा सकें। इसी तरह के प्रयत्न हमको अपने गुण-कर्म-स्वभाव के विकास के परिष्कार के लिए करने पड़ते हैं। कच्ची धातुओं को जिस तरीके से आग में तपा करके उनको शुद्ध-परिष्कृत बनाया जाता है, जेवर आभूषण बनाए जाते हैं, उसी तरीके से हमारा कच्चा जीवन कुसंस्कारी जीवन को ढाल करके ऐसा सभ्य और ऐसा सुसंस्कृत बनाया जाए कि हम ढली हुई धातु के आभूषण के तरीके से अथवा औजार-हथियार के तरीके से दिखाई पड़ें। जंगली झाड़ियों को काटकर के माली लोग अच्छे-अच्छे झाड़ और खूबसूरत पार्क बना देते हैं। हमको भी अपने झाड़-झंखाड़ जैसे जीवन को परिष्कृत करके काट-छाँट करके-समुन्नत करके इस लायक बनाना चाहिए कि जिसको कहा जा सके कि वह सभ्य और सुसंस्कृत जीवन है।

इसके लिए हमको नित्य ही आत्मनिरीक्षण करना चाहिए। अपनी गलतियों पर गौर करना चाहिए। उनको सुधारने के लिए कमर कसनी चाहिए और अपने आपका निर्माण करने के लिए आगे बढ़ना चाहिए और जो कमियाँ हमारे स्वभाव के अंदर हैं, उन्हें दूर करने के लिए जुटे रहना चाहिए। आत्म-विकास इसका एक हिस्सा है। हमको अपनी संकीर्णता में सीमित नहीं रहना चाहिए। अपने अहं को और अपनी स्वार्थपरता को, अपने हितों को व्यापक दृष्टि से बाँट देना चाहिए। दूसरों के दुःख हमारे दुःख हों, दूसरों के सुखों में हम सुखी रहें, इस तरह की वृत्तियों का हम विकास कर सकें तो कहा जाएगा कि हमने जीवन साधना करने के लिए जितना प्रयास किया, उतनी सफलता पाई। साधना से सिद्धि की बात प्रख्यात है। जीवन की साधना की सिद्धि में भी किसी प्रकार के संदेह की गुंजाइश नहीं है। अन्य किसी बात में तो संदेह की गुंजाइश भी है, देवी-देवताओं की उपासना करने पर हमको

फल मिले, न मिले कह नहीं सकते, लेकिन जीवन की साधना करने का परिणाम निश्चित रूप से भौतिक और अध्यात्मिक दोनों ही जीवनों में लाभ के रूप में देखा जा सकता है। यह साधना के बारे में निवेदन किया गया।

दूसरा है—स्वाध्याय। मन की मलिनता को धोने के लिए स्वाध्याय अति आवश्यक है। दृष्टिकोण और विचार प्राय: वही जमे रहते हैं हमारे मस्तिष्क में जो कि बहुत दिनों से पारिवारिक और अपने मित्रों के सान्निध्य में हमने सीखे और जाने। अब हमको श्रेष्ठ विचार अपने भीतर धारण करने के लिए श्रेष्ठ पुरुषों का सत्संग करना चाहिए। चारों ओर हम जिस वातावरण से घिरे हुए हैं, वह हमको नीचे की ओर गिराता है। पानी का स्वभाव नीचे गिरने की तरफ होता है। इसका स्वाभाविक स्वभाव ही ऐसा है जो नीचे की तरफ के कामों की तरफ-निष्कृष्ट उद्‌देश्यों के लिए आसानी से लुढ़क जाता है। चारों तरफ का वातावरण जिसमें हमारे कुटुंबी भी शामिल हैं, मित्र

भी शामिल हैं, घर वाले भी शामिल हैं, हमेशा इस बात के लिए दबाव डालते हैं कि हमको किसी भी प्रकार से किसी भी कीमत पर भौतिक सफलताएँ पानी चाहिए। चाहे उसके लिए नीति बरतनी पड़े अथवा अनीति का आश्रय लेना पड़े। हर जगह से यही शिक्षण हमको मिलता है। सारे वातावरण में इसी तरह की हवा फैली हुई है और यही गंदगी हमको भी प्रवाहित करती है। हमारे गिरावट के लिए काफी वातावरण विद्यमान है।

इनका मुकाबला करने के लिए क्या करना चाहिए ? श्रेष्ठता के मार्ग पर अगर हमको चलना है—आत्मोत्कर्ष करना है, तो हमारे पास ऐसी शक्ति भी होनी चाहिए जो पतन की ओर घसीट ले जाने वाली इन सत्ताओं का मुकाबला कर सके। इसके लिए एक तरीका है कि हम श्रेष्ठ मनुष्यों के साथ में संपर्क और सान्निध्य बनाए रखें, उनके सत्संग को कायम रखें। यह सत्संग कैसे हो सकता है ? यह सत्संग केवल पुस्तकों के माध्यम से संभव है, क्योंकि विचारशील

व्यक्ति हर समय बातचीत करने के लिए मिल नहीं सकते। इनमें से बहुत तो ऐसे हैं जो स्वर्गवासी हो चुके हैं और जो जीवित हैं, वे हमसे इतनी दूर रहते हैं कि उनके पास जाकर के हम उनसे बातचीत करना चाहें जो वह भी हमारे लिए बड़ा कठिन है। हम जा नहीं सकते और उनके पास जाएँ भी तो उनके लिए भी कठिन है, क्योंकि प्रत्येक महापुरुष समय की कीमत को समझता और व्यस्त रहता है। ऐसी हालत में हम लगातार सत्संग कैसे कर पाएँगे? कभी साल-दो साल में एक-आध घंटे का सत्संग कर लिया, तो क्या उससे हमारा उद्देश्य पूरा हो जाएगा? इसलिए अच्छा तरीका यही है कि हम अपने जीवन में नियमित रूप से जैसे अपने कुटुंबी और मित्रों से बात करते हैं, श्रेष्ठ महानुभावों से युग के मनीषियों से बातचीत करने के लिए समय निकालें। समय निकालने की इस प्रक्रिया का नाम है—स्वाध्याय।

स्वाध्याय को आध्यात्मिक विकास के लिए अत्यधिक आवश्यक माना गया है। स्वाध्याय के बारे

में ब्राह्मण ग्रंथों में कहा गया है—"जिस दिन विचारशील आदमी स्वाध्याय नहीं करता उस दिन उसकी संज्ञा चांडाल जैसी हो जाती है। स्वाध्याय का महत्त्व भजन से किसी भी प्रकार से कम नहीं है। भजन का उद्देश्य भी यही है कि हमारे विचारों का परिष्कार हो और हम श्रेष्ठ व्यक्तित्व की ओर आगे-आगे बढ़ें। स्वाध्याय हमारे लिए आवश्यक है। स्वाध्याय से हम महापुरुषों को अपना मित्र बना सकते हैं और जब भी जरूरत पड़ती है, तब उनसे खुले मन से, खुले दिल से बातचीत कर सकते हैं। जिस तरीके से शरीर को स्वच्छ रखने के लिए स्नान करना आवश्यक है,कपड़े धोना आवश्यक है, उसी प्रकार से स्वाध्याय के द्वारा, श्रेष्ठ विचारों के द्वारा अपने मन के ऊपर जमने वाले कषाय-कल्मषों को मलिनता को धोना आवश्यक है। स्वाध्याय से हमको प्रेरणा मिलती है, दिशाएँ मिलती हैं, मार्गदर्शन मिलता है, श्रेष्ठ पुरुष हमारे सान्निध्य में आते हैं और हमको अपने मार्ग पर चलने के लिए प्रेरित प्रोत्साहित करते

हैं, मार्गदर्शन करते हैं। ये सारी की सारी आवश्यकताएँ स्वाध्याय से पूरी होती हैं। इसलिए स्वाध्याय का साधना और भजन के बराबर ही मूल्य और महत्त्व समझा जाना चाहिए।

तीसरी बात जो आत्मिक उन्नति के लिए आवश्यक है, उसका नाम है—संयम। संयम का अर्थ है—रोकथाम। अगर हम रोकथाम करें तो जो हमारी शक्तियों का घोर अपव्यय होता रहता है, उसको बचा सकते हैं। हम अपनी अधिकांश शारीरिक और मानसिक शक्तियों को अपव्यय में नष्ट कर देते हैं, कुमार्ग पर नष्ट कर देते हैं। यदि उनको रोका जा सका होता और उपयोगी मार्ग पर लगाया गया होता तो निश्चित रूप से उन शक्तियों के चमत्कार हमको देखने को मिल सकते थे जो हमारे पास थीं। पर हम बरबादी से कुछ बचा नहीं सके। चार तरह के संयम निग्रहरूप में बताए गए हैं—इंद्रियनिग्रह, मननिग्रह, समयनिग्रह, और अर्थनिग्रह। इंद्रियनिग्रह में जिह्वा और कामेंद्रिय का संयम मुख्य है। ये इंद्रियाँ हमारी

कितनी सारी शक्तियों को नष्ट करती हैं और स्वास्थ्य को किस बुरे तरीके से खोखला करती हैं, यह सभी जानते हैं। इंद्रियनिग्रह का महत्त्व बताने की जरूरत नहीं है। शारीरिक दृष्टि से जिनको समर्थ बनाना हो, नीरोग और दीर्घजीवी बनाना हो उनको इंद्रियनिग्रह का महत्त्व समझना और अपने आप को संयम का अभ्यासी बनाना चाहिए।

दूसरा संयम मनोनिग्रह है। मन में कितने विचार उठते हैं, लेकिन वे असंयमित, बुराइयों एवं मनोविकार से भरे होते हैं। इससे हमारा मानसिक विकृत होता और बुरी आदतें होती हैं। मन:शक्तियाँ निग्रहीत करके कार्य में लगाई गई होतीं तो वैज्ञानिक बन गए होते, साहित्यकार बन गए होते। जिस भी कार्य में मन लगाया होता, सफलता की उच्च श्रेणी तक जा पहुँचे होते, पर अस्त-व्यस्त मन के कारण से सफलता संभव न हो सकी। मनोनिग्रह करके एकाग्रता की शक्ति और एक दिशा में चलने की सामर्थ्य प्राप्त कर सकें, तो उससे हमारी सफलताओं का द्वार खुल सकता है।

तीसरा है—समयनिग्रह। समय को आलस्य और प्रमाद में पड़े बरबाद करते रहते हैं। योजनाबद्ध कार्य नहीं करते,जब आया मनमरजी से काम कर लिया, नहीं हुआ तो नहीं किया इससे अस्तव्यस्तता में हमारा जीवन नष्ट हो जाता है, जबकि समय का थोड़ा सा भी उपयोग करते तो कितना लाभ उठा सकते थे?

चौथा निग्रह—अर्थनिग्रह भी ऐसा महत्त्वपूर्ण है। पैसे को विलासिता लेकर न जाने किस-किस काम में व्यसनों में, अनाचारों में हम खरच करते हैं। अगर उसको फजूलखरची से हम बचा सके होते और उस धन को हमने किसी उपयोगी काम में लगाया होता तो भौतिक एवं आत्मिक उन्नति की दिशा में हम कहीं आगे बढ़ गए होते। अर्थनिग्रह, इंद्रियनिग्रह, मनोनिग्रह, समयनिग्रह—इन चारों निग्रहों को हम करें तो संयमशील हो सकते हैं। हमको संयम बरतना चाहिए, अस्वादव्रत का, ब्रह्मचर्य का अभ्यास करना चाहिए। मौन का अभ्यास करना

चाहिए। ऐसे-ऐसे असंख्य संयम हैं जिनको अपनाने से हम तपस्वी बनते हैं और अपनी शक्ति का बहुत बड़ा भाग बचा करके अच्छे काम में लगाते हैं।

चौथा कार्य सेवा का है। मनुष्य समाज का ऋणी है, क्योंकि वह सामाजिक प्राणी है। भगवान ने उसको इसीलिए जन्म दिया है कि वह उसके इस विश्वोद्यान की सेवा करे। उसकी जीवात्मा का विकास और जीवन का लक्ष्य प्राप्त करने के लिए सेवा से बड़ा तप और सेवा से बड़ा पुराण कुछ भी नहीं हो सकता। हमको सेवा करने के लिए समय निकालते रहना चाहिए। सारे का सारा समय अपने लिए ही न खरच कर दें, वरन देश, धर्म, समाज और संस्कृति की सेवा करने के लिए भी कुछ लगाएँ। हमारा धर्म होना चाहिए कि हम अपनी शक्तियों का एक अंश दुखियारों के लिए, पीड़ितों के लिए और पतितों के लिए लगाएँ। हमारे लिए सबसे बड़ा सेवा का कार्य क्या हो सकता है ? ज्ञानयज्ञ से बड़ा कोई और दूसरा पुण्य नहीं हो सकता। इसको ब्रह्मदान भी कहा गया है। यह सर्वोत्तम

धर्म है, क्योंकि ज्ञानयज्ञ से हम मनुष्यों को दिशा दे सकते हैं जिससे वे बुराइयों से बच सकें और उन्नति के मार्ग पर ऊँचे उठ सकें। ज्ञान, विचारणा, भावना- यही शक्ति का अंश। इसलिए ब्राह्मण और साधु हमेशा से ज्ञानयज्ञ को ही सर्वोत्तम सेवा मान करके उसमें संलग्न रहे हैं और यह प्रयत्न करते रहे हैं कि हम स्वयं अच्छे बनें और अपनी अच्छाई दूसरों पर बिखेरें। इसके लिए हमको अंशदान करना चाहिए। सेवा के लिए हमको एक घंटा समय और दस पैसे नित्य का जो न्यूनतम कार्यक्रम दिया गया था ज्ञानयज्ञ-विचारक्रांति के लिए, उस पर हमको मुस्तैदी से अमल करना चाहिए। कोई भी आदमी हममें से ऐसा न हो जो कि सेवा के लिए एक घंटा समय और दस पैसे जैसी न्यूनतम शर्त को पूरा न करता हो। इससे ज्यादा ही 'हम करें', ज्यादा ही उत्साह दिखाएँ।

हम केवल भौतिक जीवन ही न जिएँ। आध्यात्मिक जीवन भी जिएँ। हमारी क्षमताओं का उपयोग, हमारे समय का उपयोग, पेट पालने तक ही

सीमित न रहे, बल्कि लोकमंगल और लोकहित के लिए भी खरच करें। इस तरीके से हम चार आधार जीवन में अपनाए रहकर के आत्मिक उन्नति के मार्ग पर चल सकते हैं। अपना परिष्कार और परिवर्तन कर सकते हैं। यदि हमने अपना परिष्कार परिवर्तन किया तो समाज परिवर्तन और समाज का परिवर्तन स्वाभाविक और सरल हो जाएगा। युग का परिवर्तन व्यक्ति के परिवर्तन और समाज के परिवर्तन के साथ जुड़ा हुआ है। अपनी छोटी सी प्रयोगशाला में हम इसी का प्रयोग करते हैं और अपनी प्रयोगशाला में सम्मिलित रहने वाले अपने परिवार में शामिल रहने वाले हर व्यक्ति से प्रार्थना करते हैं कि आपको आत्मिक उन्नति के लिए अभी बताए गए इन चार आधारों को मजबूती के साथ ग्रहण करना चाहिए और अपने दैनिक जीवन में समन्वित रखना चाहिए। साधना, स्वाध्याय, संयम और सेवा दैनिक जीवन में न्यूनतम मात्रा में भले ही हों, पर सम्मिलित अवश्य और अनिवार्य रूप से रहने चाहिए।

ॐ शांतिः

साधना, स्वाध्याय, संयम और सेवा

मानव जीवन एक अलभ्य अवसर एवं सुरदुर्लभ अवसर है, इसको तुच्छ बातों में बरबाद न करके ऐसा सदुपयोग करना चाहिए जिससे जीवनलक्ष्य की प्राप्ति हो, आनंद उल्लास और संतोष के साथ जिया जाय तथा संसार को अच्छा संसार बनाने में सहायता मिले। यदि यह निष्कर्ष सच्चे मन से निकाला गया हो तो निस्संदेह उसकी पूर्ति होना, व्यवस्था बनना कुछ भी कठिन नहीं है।

साधना, स्वाध्याय, संयम और सेवा के चार भागों में अध्यात्म विभक्त है। चारों को मिलाकर ही आत्मकल्याण की कोई सर्वांगपूर्ण व्यवस्था बन सकती है। इसके लिए आवश्यकता इस बात की है कि हम विश्वासपूर्वक इस आदर्श पर निष्ठा रखें कि अन्य आवश्यक कार्यों की तरह आत्मकल्याण का कार्यक्रम भी उपेक्षणीय नहीं वरन अन्य साधारण कार्यों की अपेक्षा अधिक महत्त्वपूर्ण है और महत्त्वपूर्ण कार्यों के लिए सोच-विचार करते रहना पड़ता है,

समय लगाना पड़ता है और श्रम करना पड़ता है। यह तीनों ही साधन जब तक आत्मकल्याण योजना में न लगेंगे, तब तक उसकी पूर्ति किसी भी प्रकार संभव न होगी। हमें अपने मस्तिष्क में आत्मकल्याण की आवश्यकता और योजना को अधिकाधिक स्थान देते चलना होगा और उसके लिए समय मिलते ही गहराई से सोच-विचार करते रहना होगा। दिन में ऐसा बहुत सा समय होता है जब शरीर आराम कर रहा होता है और मन खाली रहता है। ऐसा जितना भी समय मिले उसे आत्मकल्याण संबंधी समस्याओं को समझने और सुलझाने में लगाए रहना चाहिए।

साधना

प्रात:काल आँख खुलने से लेकर चारपाई छोड़ने में हर मनुष्य को थोड़ा-बहुत समय लगता है। आँख खुलते ही कोई चारपाई छोड़कर उठ खड़ा नहीं होता वरन कुछ समय चेतना प्राप्त करने, खुमारी दूर करने में हर किसी को लगाना पड़ता है। जाड़े के दिनों में

तथा बुढ़ापे की अवस्था में तो यह चारपाई पर पड़े रहने का समय बहुत लंबा होता है। इस समय को आत्मकल्याण की साधना में लगाते हुए किसी को कोई अड़चन न होनी चाहिए। यह समय भगवान के स्मरण में लगाना चाहिए। भगवान के हमारे ऊपर किए गए उपकार, उनकी दी हुई अनेक सुविधाओं का बाहुल्य, अनेक कठिनाइयों में उपलब्ध होती रहने वाली उनकी अदृश्य सहायताओं का बार-बार चिंतन करना चाहिए। अपनी व्यक्तिगत शक्ति स्वल्प है, जो सफलताएँ मिली हैं, उसमें अपना श्रेय न मानकर ईश्वर की ही अनुकंपा माननी चाहिए और अहंकार को तनिक भी न पनपने देना चाहिए। सफलताओं का श्रेय अपने ऊपर लेने वाले और बार-बार अहंकार भरी आत्मश्रद्धा करने वाले मनुष्य वास्तव में नास्तिक होते हैं। अहंकार नास्तिकता का प्रधान चिह्न है। प्रार्थना द्वारा हम इस अहंकार को ही गलाते हैं। ईश्वर के उपकारों के साथ-साथ उन सत्पुरुषों के, स्वजनों के अनंत उपकारों का भी स्मरण करना

चाहिए जिनकी कृपा से समय-समय पर अनेको कठिनाइयाँ हल होती रहीं तथा सुविधा सफलता प्राप्त करने का अवसर मिला।

ईश्वर के समदर्शी, न्यायकारी, घट-घटवासी स्वरूप का हमें बारंबार स्मरण करना चाहिए और यह विश्वास गहराई तक जमा लेना चाहिए कि वह हमारी प्रत्येक भावना को बहुत ध्यानपूर्वक देखता है। उनकी पवित्रता-अपवित्रता देखकर ही यह प्रसन्न अप्रसन्न होता है। भगवान की सच्ची पूजा सत्कर्मों से ही हो सकती है। कलुषित भावनाओं से भरा रहने वाला कुकर्मरत मनुष्य बाह्य पूजा उपकरणों से परमात्मा को कदापि प्रसन्न नहीं कर सकता, यह बात जितनी अच्छी तरह समझ ली जाए उतनी ही हमारी ईश्वरभक्ति सच्ची होगी। प्रातःकाल भगवान के उपकारों का ध्यान, उनके प्रति कृतज्ञता भरी श्रद्धांजलि का मानसिक समर्पण, उनके सर्वांतर्यामी और न्यायकारी स्वरूप का ध्यान करते रहने में यह समय लगाना चाहिए और जी खोलकर प्रार्थना करनी चाहिए कि

प्रभु वह शक्ति प्रदान करे जिससे मानव जीवन को सफल बनाने लायक कठिनाइयों से संघर्ष कर सकने लायक आत्मबल विकसित हो सके। प्रातःकाल की प्रार्थना के साथ-साथ युग निर्माण सत्संकल्प भी नित्य पढ़ा जाना चाहिए।

शौच, स्नान आदि से निवृत्त होकर कुछ समय नियमित गायत्री जप हर एक को करना चाहिए। एक माला जपने में कुल मिलाकर दस मिनट का समय लगता है। इतना तो हर एक को अनिवार्यतः करना ही चाहिए। अधिक अवकाश तथा अभिरुचि जिन्हें हो वे गायत्री मंत्र का अधिक संख्या में अधिक विधि-विधानपूर्वक जप कर सकते हैं। उसके परिणाम भी उन्हें अधिक प्राप्त होंगे। एक व्यस्त से व्यस्त व्यक्ति को भी १०८ मंत्र तो जप ही लेने चाहिए। किसी और देवता या मंत्र के जो उपासक हों, वे उसे भी करें, पर गायत्री उपासना को भारतीय संस्कृति के अनुयायी होने का एक अनिवार्य कर्त्तव्य मानकर इसे दैनिक जीवन में स्थान दिया ही जाना चाहिए।

स्वाध्याय

स्वाध्याय के लिए कम से कम आधा घंटा समय निकाल लेना चाहिए। स्वाध्याय के लिए केवल वही साहित्य काम में लेना चाहिए जो जीवन की वास्तविक समस्याओं पर व्यावहारिक मार्गदर्शन प्रस्तुत करता हो। हमें आज की अपेक्षा कल अधिक उत्कृष्ट कैसे बनना चाहिए? इस प्रश्न का उत्तर जिस भी पुस्तक में सरलतापूर्वक समझाया गया हो वही स्वाध्याय में प्रयुक्त हो सकती है। प्राचीन ग्रंथों के मोह में किन्हीं कथा पुराणों का एवं अत्यंत दुरूह आध्यात्मिक ग्रंथों का पाठ करते रहना स्वाध्याय की चिह्नपूजा मात्र है। उनसे स्वाध्याय की आवश्यकता की पूर्ति नहीं हो सकती।

अपने स्वजनों की स्वाध्याय आवश्यकता की पूर्ति की पूरी जिम्मेदारी 'अखण्ड ज्योति' ने अपने कंधों पर ली है। जैसे मधुमक्खी दूर-दूर से पुष्पों का पराग एकत्रित करती है और उसे मधुर रस देकर गुणवान शहद के रूप में प्रस्तुत करती है, उसी प्रकार

अपने पाठकों की दैनिक स्वाध्याय की आवश्यकता को पूर्ण करते रहने के लिए 'अखण्ड ज्योति' के पृष्ठों पर अत्यंत सारगर्भित पुण्य-सामग्री प्रस्तुत होती रहेगी। अब सरसरी दृष्टि से 'अखण्ड ज्योति' न पढ़ी जानी चाहिए वरन प्रतिदिन आधा घंटा यह सोचकर उसे पढ़ना चाहिए कि इन पृष्ठों के लेखक को समीप बैठा मानकर उसके साथ सत्संग करते हुए अनेक धर्मग्रंथों का सार मधुर मधु के रूप में प्राप्त किया जा रहा है।

संयम

संयम की योजना रात को सोते समय बनानी चाहिए। चारपाई पर पड़ते ही तुरंत नींद किसी को नहीं आ जाती। कुछ समय सोने में जरूर लगता है। इस समय को संयम योजना बनाने में लगाना चाहिए। अपनी शारीरिक, मानसिक शक्तियों और संपदाओं का अनावश्यक रूप से जहाँ अपव्यय हो रहा हो वहाँ से उसे रोक कर आत्मिक प्रयोजनों में लगाना संयम का उद्देश्य है। सोते समय दिनभर के कार्यक्रमों पर विचार करना चाहिए कि आज हमारा कितना

शरीरबल, कितना बुद्धिबल, कितना धन व्यय जीवन निर्वाह के लौकिक कार्यों में लगा? क्या इसमें से कुछ समय, श्रम और धन बचाया जा सकता था? यदि बचत हो सकती थी और अधिक व्यय कर डाला गया तो उसे असंयम का एक चिह्न मानना चाहिए और अगले दिन के लिए ऐसा उपाय सोचना चाहिए कि वह अपव्यय कम होता चले। पूर्ण रूप से विविध असंयमों को तुरंत छोड़ सकना संभव न हो तो उन्हें घटाते अवश्य चलना चाहिए। आज की अपेक्षा कल वह असंयम घटे ही, बढ़े नहीं।

आहार में अनेक प्रकार के अनेक स्वाद के व्यंजन न हों, नियत समय के अतिरिक्त अन्य समय न खाया जाय। विवाहित जीवन में भी कामसेवन की अवधि और मर्यादा रहे और वह मर्यादा लंबी ही होती चले, छोटी नहीं। विलासिता की चीजें घटें, सादगी बढ़े। सिनेमा, ताश, बीड़ी आदि का शौक लग गया हो और यदि वह तुरंत न छूटता हो तो उनकी संख्या एवं अवधि तो दिन-दिन घटाई ही जा

सकती है। अपने ऊपर होने वाला खरच क्रमश: घटाना चाहिए और उपयोग की वस्तुएँ जितनी कम की जा सकें उतनी कम करते जाना चाहिए। धन, संतान, वाहवाही आदि की तुच्छ आकांक्षाओं को बहुत सीमित करते चलना चाहिए और दांपत्य जीवन में अपनी नियत सामाजिक मर्यादा में पूर्ण संतुष्ट होकर पराई पत्तल चाटने के लिए ललचाते हुए मन को निग्रहपूर्वक रोकना चाहिए। आवेश, उत्तेजना, शोक, चिंता, भय, क्रोध, लोभ जैसे पतन के गर्त में धकेलने वाले असंयमों को उस सायंकाल के आत्मनिरीक्षण काल में भली प्रकार परखना चाहिए कि आज किस-किस शत्रु का कितना बाहुल्य रहा और कल उनको नियंत्रण में रखने के लिए क्या-क्या सावधानी बरती जाए? यह सोचना चाहिए।

संयम का तात्पर्य यह है कि बची हुई शक्तियों को शारीरिक कार्यों से समेटकर आध्यात्मिक कार्यों में लगाया जाए। जो समय, जो धन, जो बुद्धिसंयम के द्वारा बचाई गई है उसे सत्कार्य में, परमार्थ में

लगाया जाए तो ही उससे अभीष्ट उद्देश्य की पूर्ति हो सकती है।

सेवा

सेवा का अर्थ है—किसी आत्मा का स्तर ऊँचा उठाना। किसी कष्टपीड़ित को पैसा या सामान देने से सामयिक सहायता हो सकती है, पर आत्मा का कल्याण ज्ञानदान देकर, उसके स्तर को ऊँचा उठाने में ही हो सकती है, इसीलिए सेवा को ही ज्ञानयज्ञ कहा जाता है। हम अपने लिए जिस प्रकार स्वाध्याय और सत्संग का साधन जुटाते हैं, उसी प्रकार दूसरों के लिए यह उपकार करने की कुछ न कुछ योजना नित्य बनानी चाहिए। इससे बड़ा पुण्य-परमार्थ इस संसार में और कुछ नहीं हो सकता।

यह कार्य अपने परिवार से ही आरंभ करना चाहिए। कोई सुविधा का ऐसा समय ढूँढ़ना चाहिए जिसमें घर के अधिकांश व्यक्ति इकट्ठे हो सकें। इस समय एक पारिवारिक सत्संग प्रतिदिन चलाया जाए। २४ गायत्री मंत्रों का सब लोग मिलकर जप

करें, माता के चित्र को धूप दीप से पूजन करें, युगनिर्माण सत्संकल्प को एक पढ़े दूसरे दोहरावें, कोई भजन गाया जाए, फिर किसी उत्तम पुस्तक का अंश अथवा अखण्ड ज्योति का पृष्ठ पढ़कर सब को सुनाया जाए। परिवार में प्रतिदिन उत्पन्न होने वाली समस्याओं पर भी इस सत्संग में विचार-विनिमय किया जाए। इस प्रकार सामूहिक उपासना एवं विचारगोष्ठी के रूप में यह सत्संग नियमित रूप से चला करे तो उसका प्रभाव सब लोगों के जीवन पर अवश्य पड़ेगा और घर में सद्भाव, सद्विचार, सत्कर्म एवं सज्जनता की धर्म परंपरा बनी रहेगी। सद्विचारों के अभाव में ही कुबुद्धि उपजती और पनपती है। यदि उसका उन्मूलन करने के लिए पारिवारिक सत्संग चलते रहें तो हर घर में धार्मिक वातावरण बना रहेगा और स्वर्गीय वातावरण दिखाई पड़ता रहेगा। परिवार के क्षेत्र से बाहर भी यह सेवा कार्य बढ़ाया जाना चाहिए।

❐

मुद्रक—युग निर्माण योजना प्रेस, मथुरा (उ. प्र.)

: युगऋषि पं. श्रीराम शर्मा आचार्य- संक्षिप्त परिचय :

ज्यादा जानकारी यहाँ से प्राप्त करें :
http://hindi.awgp.org/about_us
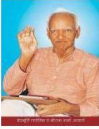
- **विचारक्रान्ति अभियान के प्रणेता** : विचारों को परिस्कृत और ऊँचा उथाने मे समर्थ 3000 से भी अधिक पुस्तकों के लेखन के माध्यम से विश्वव्यापी विचार क्रान्ति अभियान की शरुआत की ।
- **वेद, पुराण, उपनिषद के प्रसिद्ध भाष्यकार** : जिन्हों ने चारों वेद, 108 उपनिषद, षड दर्शन, 20 स्मृतियाँ एवं 18 पुराणों का युगानुकूल भाष्य किया, साथ ही 19 वाँ प्रज्ञा पुराण की रचना भी की ।
- **3000 से अधिक पुस्तकों के लेखक** : मनुष्य को देवता समान, घर-परिवार को स्वर्ग, समाज को सभ्य और समग्र विश्वराष्ट्र को श्रेष्ठ बनाने मे समर्थ हजारों पुस्तकें लिखकर समयानुकूल समर्थ मार्गदर्शन प्रदान किया ।
- **युग-निर्माण योजना के सूत्रधार** : जिन्होंने शतसूत्री युग निर्माण योजना बनाकर नये युग की आधार शिला रखी ।
- **वैज्ञानिक-अध्यात्मवाद के प्रणेता** : जिन्हों ने धर्म और विज्ञान के समन्वय की प्रथम प्रयोगशाला 'ब्रह्मवर्चस शोध संस्थान' स्थापित कर सिद्ध किया कि "धर्म और विज्ञान विरोधी नहीं, पुरक है"।
- **'२१ वीं सदी : उज्वल भविष्य' के उद्द्घोषक** : जिन्हों ने '२१ वीं सदी : उज्वल भविष्य' का नारा दिया तथा युग विभीषिकाओं से भयग्रस्त मनुष्यता को नये युग के आगमन का संदेश दिया ।
- **स्वतंत्रता संग्राम के कर्मठ सैनानी** : जिन्हों ने महात्मा गाँधी, मदन मोहन मालवीय, गुरुवर रविन्द्रनाथ टैगोर के साथ राष्ट्र की स्वाधीनता के लिए संघर्ष किया एवं स्वतन्त्रता संग्राम सेनानी "श्रीराम मत्त" के रुप में प्रख्यात हुए ।
- **गायत्री के सिद्ध साधक** : जिन्हों ने गायत्री और यज्ञ को रुढियों और पाखण्ड से मुक्त कर जन-जन की उपासना का आधार तथा सद्‌बुद्धि एवं सतकर्म जागरण का माध्यम बनाया ।
- **तपस्वी** : जिन्होंने गायत्री की कठोरतम साधना कर २४-२४ लाख के २४ महापुरश्चरण २४ वर्षो में सम्पन्न किया । प्रकृति प्रकोप को शांत कर अनिष्टों को टाला, सृजन सम्भावनाओं को साकार किया ।
- **अखिल विश्व गायत्री परिवार के जनक** : जिन्हों ने अपने जीवनकाल में ही अपने साथ करोडों लोगों को आत्मियता के सूत्र में बाँधकर विश्व व्यापी 'युग निर्माण परिवार' - 'गायत्री परिवार' का गठन किया ।
- **समाज सुधारक** : जिन्हों ने नारी जागरण, व्यसन मुक्ति, आदर्श विवाह, जाति-पाँति प्रथा तथा परंपरागत रुढियों की समाप्ति हेतु अद्‌भूत प्रयास किए एवं एक आदर्श स्वरुप समाज में प्रस्तुत किया ।
- **ऋषि परम्परा के उद्धारक** : जिन्हों ने इस युग में महान ऋषियों की महान परंपराओं की पुनर्स्थापना की । लुप्तप्राय संस्कार परंपरा को पुनर्जीवित कर जन-जन को अवगत कराया ।
- **अवतारी चेतना** : जिन्होंने "धरती पर स्वर्ग के अवतरण और मनुष्य में देवत्व के जागरण" की अवतारी घोषणा को अपना जीवन लक्ष्य बनाया और चेतना का ऐसा प्रवाह चलाया कि करोंडों व्यक्ति उस ओर चल पड़े ।

गायत्री परिवार जीवन जीने कि कला के, संस्कृति के आदर्श सिद्धांतों के आधार पर परिवार,समाज,राष्ट्र युग निर्माण करने वाले व्यक्तियों का संघ है। **वसुधैवकुटुम्बकम्** की मान्यता के आदर्श का अनुकरण करते हुये हमारी प्राचीन ऋषि परम्परा का विस्तार करने वाला समूह है गायत्री परिवार। एक संत, सुधारक, लेखक, दार्शनिक, आध्यात्मिक मार्गदर्शक और दूरदर्शी युगऋषि पंडित श्रीराम शर्मा आचार्य जी द्वारा स्थापित यह मिशन युग के परिवर्तन के लिए एक जन आंदोलन के रूप में उभरा है।